International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(3): 854-857
www.allresearchjournal.com
Received: 28-01-2016
Accepted: 29-02-2016

डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र, श्री गोविंद गुरु राजकीय महाविद्यालय,
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत।

Correspondence Author:
डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र, श्री गोविंद गुरु राजकीय महाविद्यालय,
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत।

"जैन दर्शन में सत्य की अवधारणा"

डॉ. अंजना रानी

सारांश
"सत्यमेव जयते" मुंडकोपनिषद से लिया गया यह वाक्य हमारे भारत देश का राष्ट्रीय आदर्श वाक्य है। इसका अर्थ है -सत्य ही जीतता है। किंतु जीवन का अनुभव कहता है कि असत्य के मार्ग से चलने वाले लोग ज्यादा सफल होते दिखाई दे रहे हैं। धर्म क्षेत्र में भी असत्य का बोलबाला दिखाई पड़ रहा है तो फिर राजनीति के क्षेत्र में और अन्य सांसारिक क्षेत्र में इसकी सीमा का निर्धारण करना कठिन है। तो फिर एक सवाल उठता है कि "क्या यह आदर्श वाक्य सिर्फ लिखने और बोलने के लिए है?" जहां तक हमारे मनीषियों का संबंध है, उन्होंने जानकर, अनुभवकर यह उद्घोष किया। उन्होंने पाया कि सत्य अवश्यमेव प्रकट होता है अर्थात् बचता है। गीता में भी कहा गया कि सत्य का अभाव नहीं हो सकता और असत्य का भाव नहीं हो सकता। इस पृष्ठभूमि में देखें तो सत्य ही जीतता है, इस बात में बल दिखने लगेगा। हमारी कामना भी यही है कि सत्य ही जीतना चाहिए। फिर भी लोग असत्य में जी रहे हैं। सत्य का व्यवहार किया भी जाता है तो एक साधन की तरह। इस कारण से सत्य हमें मुक्त नहीं करता बल्कि बंधन में डालता है। अतः उस सत्य को समझने के लिए विराट एवं सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। इस दिशा में यह शोध लेख एक विनम्र प्रयास है।

कूट शब्दः सत्य, असत्य, तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, अनेकांतवाद,स्यादवाद।

प्रस्तावना

सत्य-सूत्र

निच्चकाल अप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाआउत्तेण दुक्करं।।
तहेव सावज्ज आणुमोयणी गिरा, ओहारिणी जा य परोवघायणी ।
से कोह लोह भय हास माणवो, न हासमाणो वि गिरं वएज्जा।।[1]।।

अर्थात् सदा अप्रमादी व सावधान रहते हुए असत्य को त्याग कर हितकारी सत्य वचन ही बोलना चाहिए। इस प्रकार का सत्य बोलना सदा बड़ा कठिन होता है। श्रेष्ठ साधु पापमय, निश्च-यात्मात्मक और दूसरों को दुख देने वाली वाणी न बोले। इसी प्रकार श्रेष्ठ मानव को क्रोध, लोभ, भय और हंसी-मजाक में भी पाप वचन नहीं बोलना चाहिए।

यहां सत्य को आचरण में लाने के पहले हमें सत्य के स्वरूप को समझना आवश्यक है। इस हेतु सर्वप्रथम हमें तथ्य और सत्य के अंतर को स्पष्ट करना होगा।

लौकिक जगत में कोई घटना घटी, वह एक तथ्य है। उस सत्य का साक्षात्कार जब किसी दृष्टा ने किया तो यहां तथ्य के साथ उस दृष्टा विशेष की दृष्टि जुड़ गई और यह एक सत्य बन गया। प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि अपने आप में अनूठी होती है। इस अनूठेपन के साथ भिन्न-भिन्न व्यक्ति विभिन्न उद्देश्यों को लेकर जब भिन्न-भिन्न रूपों में उसे अभिव्यक्ति देते हैं तो सत्य के विभिन्न रूप हमारे सामने आते हैं। तथ्य विज्ञान का विषय हो सकते हैं लेकिन दर्शन, साहित्य और धर्म का विषय तो सत्य ही है। इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता। तथ्य सत्य की सबसे बाहरी परिधि है, जितने हम गहराई में जाएंगे, तथ्य छूटता जाएगा और सत्य निकट आता जाएगा।

जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र को समन्वित रूप में स्वीकार कर इन्हें त्रिरत्न की संज्ञा दी गई हैं, तो सत्य को आचरण में लाने के पहले हमारी दृष्टि सम्यक् होनी चाहिए तब हमें सत्य का सम्यक् ज्ञान हो पाएगा। उसके पश्चात हम सत्य का व्यवहार करने के अधिकारी बन सकेंगे। उस सत्य को किस तरह व्यवहार में लाना है, इसका निर्देश उपर्युक्त सूत्र में दिया गया है।

सर्वप्रथम सम्यक् दृष्टि को समझें। विभिन्न विद्वानों के व्याख्यानों को पढ़ने-सुनने के बाद सम्यक् दृष्टि का अर्थ जो मैं समझ पाई, वह है- सब दृष्टियों से मुक्त हो जाना। यह सत्य के सम्यक् ज्ञान के लिए अनिवार्य है। इसके लिए हमें अपने सभी पूर्वाग्रहों को चाहे वह पंथ का पूर्वाग्रह हो या जाति का, देश का हो या संस्कृति का, छोड़ देना होगा; जो बड़ा कठिन कार्य है। कांट कहेंगे कि सभी पूर्वाग्रहों को छोड़ भी दिया जाए तो देश और काल तो हमारे अंदर अंतर्निहित एक चश्मे के दो लेंस की तरह हैं। और इसी के माध्यम से हमें कोई ज्ञान हो सकता है तो देश और काल का प्रभाव तो हमारे ऊपर रहेगा ही। इसीलिए कांट को कहना पड़ा कि तत्व अपने आप में (thing in itself) अज्ञेय है।

सत्य के साक्षात्कार के लिए पूर्वाग्रहों से मुक्त होने की इस विधि को दार्शनिक भिन्न-भिन्न नाम देते रहे हैं। देकार्त की संदेह विधि और फिनोमिनालोजी की कोष्ठकीकरण पद्धति को इस रूप में समझा जा सकता है। एक उदाहरण के द्वारा हमें सम्यक दृष्टि को समझने में मदद मिल सकती है। हमें पृथ्वी के सही आकार की जानकारी तभी मिल पाई जब हम अंतरिक्ष में जाने में सफल हुए। पृथ्वी पर खड़े रहकर पृथ्वी का फोटो किसी भी कोण विशेष से लिया गया फोटो ही होगा। सभी कोणों या कहें कि सभी दृष्टियों से मुक्त हम तभी हो पाएंगे जब हम जिसके स्वरूप को समझना चाहें, उससे एक निश्चित दूरी पर खड़े हों। इसीलिए बार-बार हमारे दर्शन में एक साक्षी भाव, दृष्टा भाव अपनाने की बात सामने आती है।हम साक्षी भाव और जैन दर्शन की वीतरागता को समानार्थक रूप में समझ सकते हैं।

इस प्रकार की सम्यक् दृष्टि से प्राप्त सम्यक् ज्ञान का निर्वचन करने के लिए उपर्युक्त सूत्र में निर्देश दिया जा रहा है। सत्य है, केवल इसलिए नहीं बोल देना है। सावधान रहते हुए बोलना है। सावधानी से तात्पर्य है, सत्य बोलने के पीछे आपका हेतु क्या है? कहीं किसी को चोट पहुंचाने के लिए, अपमानित करने के लिए तो आप सत्य नहीं बोल रहे हैं। सत्य बोलने के पीछे आपका

मोटिव क्या है? क्योंकि महावीर का सारा जोर इस बात पर है कि पाप और पुण्य कृत्य में नहीं होते, आपके अभिप्राय में या हेतु में होते हैं। कृत्य का परिणाम बाहर दिखाई देता है,हेतु दिखाई नहीं देता। अतः विज्ञान के पास हेतु की परीक्षा करने का कोई उपाय नहीं है।विज्ञान केवल परिधि तक सीमित है।

दूसरी शर्त जो सत्य के साथ जोड़ी जा रही है, वह है सदा हितकारी सत्य वचन ही बोलें। आपका हेतु बुरा नहीं है, केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। इस बात का भी ख्याल रखना है कि आपका सत्य निर्वचन दूसरे का अहित ना कर दे।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सत्य बोलने में बड़ी शर्तें हो गईं। पहले तो अप्रमाद का त्याग हो गया, फिर असत्य के त्याग में असावधानी का त्याग हो गया, फिर दूसरे के अहित का भी त्याग हो गया। इन सब शर्तों के पूरा हो जाने पर जो सत्य बचेगा, वही आप बोलें। यह इतना कठिन है कि हो सकता है, आपको बोलने के लिए कुछ बचे न और आपको मौन हो जाना पड़े क्योंकि यहां प्रेय को नहीं, श्रेय को महत्व दिया जा रहा है।

हम बहुत से असत्यों में जी रहे हैं। कुछ आदतन असत्य हैं तो कुछ हमारी शिक्षा से, हमारे मजहब से, हमारी सामाजिक परंपरा से इस कदर हमारी चेतना के साथ संपृक्त हो चुके हैं कि हमने कभी उनको जांचना भी जरूरी नहीं समझा और हम उनमें जीये चले जा रहे हैं। जो सत्य हमने स्वयं नहीं जाना, महावीर कहेंगे कि यदि आप उसका निर्वचन करते हैं तो एक तरह से आप असत्य भाषण कर रहे हैं। पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर पुस्तक में ऐसा कहा गया है इतना तो आप कह सकते हैं, लेकिन ऐसा है, आत्मा है या ईश्वर है, आप तभी कहने के अधिकारी माने जाएंगे जब आपने अपने स्वयं के अनुभव से उसे जाना हो।

दूसरे श्लोक में कहा जा रहा है कि श्रेष्ठ साधु पापमय निश्चयात्मक और दूसरों को दुख देने वाली वाणी न बोले। यहां एक बड़ी अद्भुत बात हमारे सामने आती हैं, वह यह कि हम प्रायः यह समझते हैं कि सत्य तो निश्चयात्मक होता है, फिर यहां ऐसा आदेश क्यों दिया जा रहा है कि साधु निश्चयात्मक वाणी न बोले। यहां इस आदेश को सही रूप में समझने के लिए हमें जैन दर्शन के तत्वमीमांसीय सिद्धांत "अनेकांतवाद" और ज्ञानमीमांसीय सिद्धांत "स्यादवाद" को समझना होगा। अनेकांतवाद के अनुसार जगत में अनंत वस्तुएं हैं और उनमें से प्रत्येक वस्तु के अनंत धर्म हैं, गुण हैं। केवल इतना ही नहीं, अनेकांतवाद मानता है कि एक ही वस्तु में विरोधी गुण भी एक साथ रह सकते हैं। जैसा कि प्रोफेसर दयानंद भार्गव द्वारा बेरिलियम धातु का उदाहरण देकर इसे समझाया गया है। अतः निश्चयात्मक होना असत्य की तरफ ले जाना है। यहां इसका अर्थ हमें यह नहीं समझना चाहिए कि सत्य निश्चित नहीं होता बल्कि यह समझना चाहिए कि सत्य इतना विस्तृत और एक साथ विरोधी गुणों से युक्त होता है कि एक निश्चित वाक्य में वह समाहित नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए हम कहते हैं - अमुक व्यक्ति जन्मा तब यह एक अधूरा सत्य ही होगा क्योंकि उस व्यक्ति ने मरना भी शुरू कर दिया। तात्पर्य यह हुआ कि सत्य को पूरा जाना तो जा सकता है, लेकिन कहा कभी नहीं जा सकता। इसलिए अनिश्चय ज्ञान का अनिवार्य अंग बन जाता है। अनुभव निश्चित हो सकता है, अभिव्यक्ति निश्चित रूप में नहीं की जा सकती। ऐसे ही सत्य के लिए हमने आदर्शवाक्य चुना - "सत्यमेव जयते।"

संदर्भ

1. महावीर वाणी भाग 1 ओशो पृष्ठ 384
2. "भारतीय दर्शनिक एक अनुशीलन" - चंद्रधर शर्मा
3. "पाश्चात्य दर्शन समीक्षात्मक इतिहास" - याकूब मसीह

4. “पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृतियां” - जगदीश सहाय श्रीवास्तव
5. “समकालीन पाश्चात्य दर्शन” - लक्ष्मी सक्सेना
6. प्रो. दयानंद भार्गव का व्याख्यान, जैन विश्व भारती लाडनूं में 2006